International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
Septmber 2017

लोकतंत्र की विभिन्न अवधारणायें

शशिकान्त राव
एम.ए.राजीनति विज्ञान
इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद

लोकतंत्र की जिन परिभाषाओं का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनसे स्पष्टतः प्रकट होता है कि अलग–अलग विद्वानों ने लोकतंत्र को परिभाषित करते समय भिन्न–भिन्न दृष्टिकोणों का सहारा लिया है। उन विभिन्न दृष्टिकोणों में कुछ प्रमुख निम्नवत् हैं–

1. **उदारवादी दृष्टिकोण–** लोकतंत्र के उदारवादी (''ाास्त्रीय) दृष्टिोण के विकास का इतिहास लगभग पिछली तीन शताब्दियों का है। इसके प्रमुख प्रणेताओं में बेन्थम, ग्रीन, हॉब्स, लॉक, रूसो अब्राहम लिंकन, आदि वि''ोष उल्लेखनीय हैं। इस सन्दर्भ में अब्राहम लिंकन की परिभाषा वि''ोष रूप से व्यापक एवं उपयुक्त है, क्योंकि उन्होंने लोकतंत्र को जनता का, जनता के लिए और जनता द्वारा शासन बतलाया है। **मेरी पार्कर फालेट** के अनुसार, ''लोकतंत्र एक आध्यात्मिक आद''ा है। यह एक संगठन तथा जीवन–मार्ग है जहां व्यक्तित्व तथा मानवता का पूर्ण विकास सम्भव है।'' इसके समस्त समर्थकों ने मनुष्य और उसके अधिकार को केन्द्र मान कर ही अपने विचारों का प्रतिपादन किया है। इसके अनुसार, लोकतंत्र की अवधारणा व्यापक है जिसमें इसे शासनतंत्र के स्वरूप, राज्य के रूप में एक व्यवस्था, समाज के वि''ाल रूप, नैतिक प्रारूप, आर्थिक आधारि''ाला, जीवन की महती परिपाटी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। यह दृष्टिकोण लोकतंत्र को एक ऐसी शासन प्रणाली और सामाजिक व्यवस्था के सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करता है जिसकी एक वि''ोष प्रकार की मनोवृत्ति होती है और जिसका एक आर्थिक आधार होता है। यह लोकतंत्र के राजनीतिक, सामाजिक और दैनिक व्यवहार के सारे सामाजिक एवं सांस्कृतिक मापदण्डों को सम्मिलित रूप में इसकी परिभाषा के अन्दर प्रस्तुत करता है। स्पष्ट है कि उदारवादी या शास्त्रीय दृष्टिकोण लोकतंत्र को एक ऐसी शासन–व्यवस्था और सामाजिक अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करता है, जिसकी मनोवृत्ति एक वि''ोष कलेवर की होती है और जिसकी पुष्ट, दृढ़ और नि''िचत आधारभूमि होती है। इसकी परिधि में राजनीतिक, सामाजिक एवं दैनिक आचरण के समस्त सामाजिक एवं सांस्कृतिक मापदण्ड सम्मिलित हैं।

आलोचना– उदारवादी या शास्त्रीय अवधारणा द्वारा प्रस्तुत विचारों से लोकतंत्र का यथार्थ स्वरूप स्पष्ट नहीं होता। यह सटीक ढंग से यह स्पष्ट करने में असमर्थ रही है कि लोकतंत्र किस प्रकार से कार्य करता है और इसे किस प्रकार कार्य करना चाहिए। इसकी प्रमुख आलोचनाएं निम्नवत हैं–

1) आदि यूनानी दार्शनिक प्लेटो, अरिस्टाटिल, आदि ने लोकतंत्र को सरकार के विकृत रूप में प्रस्तुत किया है। आलोचकों ने इसे 'भीडतंत्र' और बेवकूफों का शासन' बतलाया हैं एच0 जी0 वेल्स ने लोकतंत्र को 'सपनों का महल' कहा है। सर हेनरी मेन ने भी इसे 'बुद्धिहीनों एवं अयोग्यों का शासन' माना है। लेकी के शब्दों में, ''प्रजातंत्र वह शासन प्रणाली है, जिसका संचालन सबसे अधिक दरिद्र और सबसे अधिक अज्ञानी लोगों के हाथों में होता है, जिनकी संख्या स्वभावतः अधिक होती है।''

2) यह दृष्टिकोण मूल्य परक होने के कारण, आलोचकों का आरोप है, मूल्यों और आदर्शों पर अत्यधिक बल देता है और वास्तविक तथ्यों की अवहेलना करता है।

3) आलोचकों के अनुसार, लोकतंत्र अनुत्तरदायी शासन है। फैगेट के शब्दों में, ''लोकतंत्र–शासन के अन्तर्गत शासन–सत्ता एक अव्यवस्थित भीड़ के हाथों में रहती है। इसलिए किसी को कोई शिकायत करनी हो तो किससे करे?'' **हर्नशा** का मत है कि लोकतंत्र मनुष्यों में सार्वजनिक कार्यों के प्रति उदासीनता उत्पन्न करता है।

4) उदारवादी दृष्टिकोण राजनीतिक समानता पर बल देता है, जब कि सच्चाई यह है कि राजनीतिक समानता जैसी कोई चीज़ होती ही नहीं।

5) आलोचकों का आरोप है कि यह कोरे आदर्शवाद पर अवलम्बित है। यह समानता की बात तो करता है, किन्तु उसे यथार्थ में कैसे प्राप्त किया जाये, यह नहीं बतलाता। यही कारण है कि बर्क का कथन है कि ''लोकतंत्र समानता का एक भयानक प्रपंच है।'' वस्तुतः यह सैद्धान्तिक रूप में उन समस्त चीज़ों की मांग करता है, जिनका यथार्थ जगत् से कोई सरोकार नहीं होता।

6) यह विशिष्ट वर्ग और व्यक्तियों को समुचित महत्व प्रदान नहीं करता।

7) लोकतंत्र वीर–पूजा की भावना को आधार बना कर आगे बढ़ता है, क्योंकि सामान्य जनता अपनी अज्ञानता एवं नासमझी के कारण एक नेता को पूजने लगती है। इतिहास गवाह है कि इसी वीर–पूजा की भावना के कारण ही जर्मनी में हिटलर और फ्रांस में नेपोलियन तानाशाह बन गये थे।

8) लोकतंत्र की उदारवादी अवधारणा में वर्ग–संघर्ष एवं वर्ग–विरोध को प्रश्रय मिलता है। इसमें प्रायः शासन पूंजीपति वर्ग के हाथों में केन्द्रित हो जाता है, जो धन के बल पर मतदाताओं और मंत्रियों का क्रय कर लेने में सफल होते हैं। फलस्वरूप लोकतंत्र पूजीपतियों के शासन में परिणत हो जाता है और गरीब–अमीर के मध्य एक गहरी खाईं तैयार हो जाती है जो राज्य के वास्तविक वातावरण को अशांत एवं विद्रोहात्मक बना देता है।

9) लोकतंत्र सभ्यता, संस्कृति एवं विज्ञान के प्रतिकूल है। **लेकी** के शब्दों में, ''लोकतंत्र बौद्धिक विकास तथा वैज्ञानिक सत्य की प्रगति के विपरीत है।'' **सन हेनरी मेन** भी घोषित करता है– ''लोकतंत्र बौद्धिक उन्नति, साहित्य कला तथा विज्ञान का विरोधी है।'' वस्तुतः बुद्धिजीवी प्रायः लोकतंत्र की त्रुटियों के प्रति उपेक्षा भाव पोषित करते हैं।

10) आलोचकों के अनुसार, इसमें धन और समय की बुरी तरह से बरबादी होती है। निर्वाचन, प्रतिनिधियों के वेतन–भत्तों के फलस्वरूप अपव्यय में बहुत अधिक बढ़ोतरी हो जाती है।

11) नैतिक दृष्टि से भी लोकतंत्र निंदनीय है, क्योंकि ईमानदारी का इसमें प्रचार किया जाता है, जबकि झूठ और निंदा राजनीति का अभिन्न अंग बन जाता है।

12) दलगत गतिविधियां लोकतंत्र में नग्न नृत्य करती हैं। दलगत दुर्भावना के कारण पारस्परिक लड़ाई–झगड़ा और एक–दूसरे को नीचा दिखलाने का भरपूर प्रयत्न इसका अनिवार्य तत्व बन जाता है।

उपरोक्त आलोचनाओं के बावजूद लोकतंत्र के उदारवादी दृष्टिकोण में अनेक महत्वपूर्ण गुण विद्यमान रहे हैं, जिनके कारण ही आज संसार के ज्यादातर देशों ने न केवल इसे अपनाया है, बल्कि अपनी सारी व्यवस्था का आधार ही इसे बना लिया है। सच तो यह है कि इसकी मान्यताएं आज भी सर्वमान्य रूप से स्वीकृत एवं प्रचलित हैं।

2. **विशिष्टवर्गीय दृष्टिकोण–** लोकतंत्र के परम्परावादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत इसे बहुसंख्यक का शासन माना गया है, किन्तु विशिष्टवर्गीय या अभिजनवादी दृष्टिकोण इसे अल्संख्यक का शासन बतलाता है। इसके अनुसार किसी भी दे''ा में शासन सत्ता अन्ततः कुछ विशिष्ट जनों या एक विशिष्ट वर्ग के हाथों में निहित रहती है। **हैराल्ड डी0 लासवेल** ने स्पष्ट वादिता के साथ कहा है– ''सरकार हमे''ाा अल्पसंख्यक की होती है।'' वस्तुतः इनके अनुसार जनता का शासन तो मात्र एक धोखा है। समस्त जनता न तो कभी शासक रही है और न ही कभी शासन कर सकती है। मात्र कुछ निर्वाचित विशिष्टवर्गीय व्यक्ति ही शासन करने के योग्य समझे जाते हैं

और केवल वही सत्ता तक पहुंच पाते हैं। इस विशिष्ट वर्ग को अभिजन, राजनीतिक वर्ग, शासक अभिजन, शक्ति अभिजन, सर्वोच्च नेतृत्व, आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। **मोस्का पैरोटो, माइकेल्स, जेम्स बर्नहम, सी0 राइट मिल्स, हेरॉल्ड, डी0 लॉसवेल, मिथेल,** आदि विशिष्टवर्गीय दृष्टिकोण के प्रतिपादकों में विशेष महत्वपूर्ण हैं, **हालांकि रॉबर्ट ए ढाल** तथा **सारटोरी** ने भी इसके विश्लेषण में विशेष रूचि का प्रदर्शन किया है।

इस प्रकार विशिष्टवर्गीय दृष्टिकोण प्रजातंत्र की उदारवादी अवधारणा के दोषों, अपर्याप्ताओं और अपूर्णताओं का परिष्कार कर देता है। लोकतंत्र के सक्रिय संगठन के लिए यह अवधारणा अत्यावश्यक एवं उत्तम है। सच बात तो यह है कि लोकतंत्र नियमित निर्वाचन, वयस्क मताधिकार तथा जनतंत्रीय प्रतियोगिता पर आधारित नेता एवं अनुगामियों के मध्य खुला संबंध है। यह एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। यह सदैव मुक्त एवं प्रतियोगी अल्पसंख्यकों की रचना करती है। इस तरह **सारटोरी** ने अपनी परिभाषा में इसका समवेत रूप प्रस्तुत कर लोकतंत्र की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह एक ऐसी राज्य–व्यवस्था है जिसमें बहुमत का प्रभाव निर्वाचित एवं प्रतियोगी अल्पसंख्यकों के द्वारा जिन्हें वह सौंपा जाता है, आश्वस्त कर दिया जाता है। नागरिकों से यह अपेक्षा करना दुराशा के सिवा और कुछ भी नहीं हो सकता कि वे इन नेताओं को नियंत्रित करें। वस्तुतः यह कार्य अन्य नेताओं द्वारा सम्पादित किया जाता है । इसलिए लोकतंत्रीय व्यवस्था में नेतृत्वशील अल्पसंख्यक अपरिहार्य है। अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि विशिष्ट वर्गीय दृष्टिकोण के अनुसार लोकतंत्र प्रतियोगी निर्वाचित अल्पसंख्यकों की चयन व्यवस्था है।

3. **बहुलवादी दृष्टिकोण**–बहुलवादी दृष्टिकोण इस मान्यता का प्रणेता है कि सम्पूर्ण व्यवस्था में व्यक्तियों द्वारा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आदि क्षेत्रों में निर्मित विविध समुदाय अपनी प्रभावपूर्ण स्थिति बनाये रखते हैं। इसलिए सच्चा जनतंत्र तभा स्थापित हो सकता है जब सारी व्यवस्था में ऐसे ऐच्छिक समुदायों की महत्वपूर्ण स्थिति को मान्यता प्रदान की जाये। इस दृष्टिकोण की मान्यतानुसार ''अनेकता में एकता की स्थापना करना लोकतंत्र है, और अनेकता का विनाश करना अलोकतंत्रीय है। अमेरिका एवं पाश्चात्य यूरोप की शासन–व्यवस्था को बहुलवादी लोकतंत्र की श्रेणी मे रखा जाता है। इसके प्रतिपादकों में **मोरिस दुवर्जर, रॉबर्ट ए0 डहल, लोवेन्स्टी, लिपसेट**, आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

बहुलवादी दृष्टिकोण का सार सत्ता का विकेन्द्रीकरण है। **दुवर्जर** के अनुसार, ''यह निर्णय के विभिन्न केन्द्रों का होना'' है। रॉबर्ट ए0 डहल ने इसे 'बहुतंत्र (Polyarchy) की संज्ञा दी है, और लोवेन्स्टीन ने 'पालीक्रेसी' संज्ञा प्रदान की है। रॉबर्ट ए0 डहल के शब्दों में, ''सरकारी नीतियों

International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 04 Issue 12
Septmber 2017

का निर्धारण कोई एक वर्ग नहीं, बहुत से वर्ग करते हैं, जैसे व्यापारी, उद्योगपति, श्रमिक संघ, राजनीतिक मतदाता तथा स्वयंसेवी संस्थाएं।'' लिपसेट ने निम्न वर्गों का राजनीति में योगादन, मतदान पर सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव, राजनीतिक पर बुद्धिजीवियों का प्रभाव, मजदूर संघों से सम्बद्ध राजनीतिक गतिविधियां, जैसे अनेक महत्वपूर्ण पक्षो ो बहुलवादी लोकतंत्र से सम्बद्ध बतलाया है। इन विद्यद्वानों ने, लोकतंत्र को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में चित्रित किया है जिसमें अनेक दल, दबाव गुट तथा हित समूह राजनीतिक क्रियाओं को प्रभावित करने के लिए प्रयासरत रहते हैं इसके अन्तर्गत प्रत्येक दल परस्पर एक–दूसरे की शक्तियों पर अंकुश का कार्य करते हैं। जहां तक राजीनतिक अथवा आर्थिक समस्याओं का सवाल है, कों एक वर्ग या व्यक्ति या समूह अकेले निर्णय नहीं लेता है। वस्तुतः बहुलवादी लोकतंत्र में शक्तियों का विकेन्द्रीकरण होता हैं अर्थात् निर्णय लेने के अनेक केन्द्र होते हैं। यह लोकतंत्र की विशुद्ध और ऐतिहासिक अवधारणा है। इस सिद्धानत की मान्यतानुसार, लोकतंत्र आपसी विचार–विनमय पर आधारित शासन व्यवस्था है।

4. **मार्क्सवादी दृष्किोण**–आधुनिक काल में लोकतंत्र की एक नवीन अवधारणा का उदय हुआ है, जो कार्ल मार्क्स और लेनिन के विचारों पर आधारित है और जिसे 'लोकतंत्र का मार्क्सवादी सिद्धान्त' कहते हैं। इसे 'जनवादी लोकतंत्र' नाम भी दिया जाता है। इसका आधार कार्ल मार्क्स द्वारा प्रणीत वर्ग संघर्ष का सिद्धान्त है। इसके प्रणेताओं का मत है कि शास्त्रीय या उदारवादी लोकतंत्र की शासन प्रणाली लोकतंत्र का ढकोसला मात्र है। मार्क्सवादी दृष्टिकोण की मान्यता है कि पाश्चात्य लोकतंत्रों में शासन मात्र साधन–सम्पन्न वर्ग के नियंत्रण में होने के चलते राज्य में शासनतंत्र का प्रयोग इसी वर्ग के हितों के पोषण के लिए किया जाता है। मार्क्स का मत है कि जिस राज्य में शासन व्यवस्था का संचालन मात्र साधन–सम्पन्न वर्ग के हित के रूप में किया जाता है, वह लोकतांत्रिक तो हो ही नहीं सकता। मार्क्सवादी दृष्टिकोण बतलाता है कि जब तक पूंजीवाद तथा निजी सम्पत्ति का अस्तित्व रहेगा, तब तक लोकतंत्र भी पूंजीवादी ही रहेगा और समर्थन भी उन्हीं का करेगा। सच्चे लोकतंत्र की स्थापना इसके अनुसार तभी सम्भव है जब पूंजीवादी राज्य का अन्त कर के सर्वहारा (श्रमिक) वर्ग की अधिनायकशाही की स्थापना की जाये। वास्तविकता तो यह है कि लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था उस शासन प्रणाली को कहा जाना चहिए, जहां इसका प्रयोग समस्त वर्गों के कल्याण और वर्गविहीन समाज की अवतारणा के लिए किया जाता है।

यहां यह चर्चा कर देना भी वांछनीय होगा कि मार्क्सवादी लोकतंत्र की पूर्व शर्तों के रूप में तीन संस्थागत व्यवस्थाओं को अपनाना अत्यावश्यक है। एक, उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर

सार्वजनिक स्वामित्व; दो, सम्पत्ति का समान वितरण और सभी व्यक्तियों को आर्थिक सुरक्षा; तथा तीन, साम्यवादी दल का समस्त सत्ता पर एकाधिकार।

अन्त में, यह कहने में जरा भी संकोच नहीं है कि मार्क्सवादी लोकतंत्र को अधिनायकवाद के अधिक निकट माना जा सकता है। इसके प्रतिपादक इसे 'बहुजन हिताय' बतला कर 'एक उच्च प्रकार का लोकतंत्र' मान सकते हैं किंतु सच यह है कि इसके द्वारा आर्थिक लोकतंत्र अस्तित्व में आ सकता है। वस्तुतः यह एकांगी है और अधूरे लोकतंत्र को जन्म देता है। बिना आर्थिक एवं राजनीतिक लोकतंत्र के सम्यक् समन्वय के सच्चे लोकतंत्र की स्थापना हवाई किला बनाने जैसा है और यह मार्क्सवादी दृष्किोण के लोकतंत्र में सम्भव नहीं है।

5. **समाजवादी दृष्टिकोण–** लोकतंत्र का समाजवादी दृष्टिकोण उदारवादी एवं मार्क्सवादी अवधारणाओं के समन्वय का परिणाम है। यह एक ओर तो लोकतांत्रिक मूल्यों को अपना आधार बना कर आगे बढ़ता है और दूसरी ओर आर्थिक समानता की सहायता से निर्मित व्यवस्था को अपनी आधारशिला बनाना चाहता है। यह राजनीतिक स्वतंत्रता एवं आर्थिक समानता को मूलभूत तत्व मान कर चलता है। यही कारण है कि इस दृष्टिकोण को उदारवाद एवं मार्क्सवाद का संगम कहना औचित्यपूर्ण नहीं कहा जा सकता। तृतीय विश्व के अधिकांश देशों को जहां राजीतिक स्वतंत्रता की सुविधा देनी पडी वहीं उन्हें आर्थिक असमानताओं को ज़यादा–से–ज्यादा घटाने का भागीरथ प्रयास भी करना पड़ा है। भारत ऐसे ही देशों की श्रंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी है। भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक बार कहा था कि ''स्वतंत्रता तभी वास्तविक बनती है जब यह उन बहुसंख्यक लोगों के लिए, जो अत्यधिक पीड़ित एवं उपेक्षित रहे हैं, कुछ राहत ला सके तथा सुविधाएं देश के गरीब व्यक्ति तक पहुंच सकें।''
वस्तुतः उपरोक्त दृष्किोणों में कुछ–न–कुछ सत्यांश अवश्य है। इसलिए सच्चे लोकतंत्र की यथार्थ के धरातल पर अवतरणा करने के लिए उन सभी का समन्वय वांछनीय है।

References

Larry Jay Diamond, Marc F. Plattner (2006). Electoral systems and democracy p.168. Johns Hopkins University Press, 2006.

Rayasam, Renuka (24 April 2008). "Why Workplace Democracy Can Be Good Business". U.S. News & World Report. Retrieved 16 August 2010.

Przeworski, Adam (1991). Democracy and the Market. Cambridge University Press. pp. 10–14.

Barker, Ernest (1906). The Political Thought of Plato and Aristotle. Chapter VII, Section 2: G. P. Putnam's Sons.

Hénaff, Marcel; Strong, Tracy B. (2001). Public space and democracy. Minneapolis: University of Minnesota Press. ISBN 9780816633883.

Scruton, Roger (9 August 2013). "A Point of View: Is democracy overrated?". BBC News. BBC.

Barak, Aharon (2006), "Protecting the constitution and democracy", in Barak, Aharon, The judge in a democracy, Princeton, New Jersey: Princeton University Press, p. 27

Nussbaum, Martha (2000). Women and human development: the capabilities approach. Cambridge New York: Cambridge University Press. ISBN 9780521003858.

Grinin, Leonid E. (2004). The Early State, Its Alternatives and Analogues. Uchitel' Publishing House.

"Origins and growth of Parliament". The National Archives. Retrieved 7 April 2015

Johnston, Douglas M.; Reisman, W. Michael (2008). The Historical Foundations of World Order. Leiden: Martinus Nijhoff Publishers. p. 544.

Ethan J. "Can Direct Democracy Be Made Deliberative?", Buffalo Law Review, Vol. 54, 2006

Dworkin, Ronald (2006). Is Democracy Possible Here? Princeton: Princeton University Press. ISBN 9780691138725, p. 134.

The Review of Policy Research, Volume 22, Issues 1–3, Policy Studies Organization, Potomac Institute for Policy Studies. Blackwell Publishing, 2005. p. 28

Glaeser, E.; Ponzetto, G.; Shleifer, A. (2007). "Why does democracy need education?". Journal of Economic Growth. 12 (2): 77–99

Deary, I. J.; Batty, G. D.; Gale, C. R. (2008). "Bright children become enlightened adults". Psychological Science. 19 (1): 1–6.